JUSTICE FOR ALL न्याय सब के लिए

न्याय सर्वांसाठी انصاف سب کے لیے બધા માટે ન્યાય

'इन्साफ़ सबके लिये' अभियान

जवाबदेही तय करो! सज़ा तय करो!

साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुनर्वास तक पहुँच) विधेयक 2011 को संसद में रखने के लिये राष्ट्रीय अभियान

न्यायमूर्ति पी.बी. सावन्त (उच्चतम न्यायालय से रिटायर्ड), न्यायमूर्ति होस्बेट सुरेश (मुंबई उच्च न्यायालय से रिटायर्ड), न्यायमूर्ति एस. एच. ए. रज़ा (इलाहाबाद उच्च न्यायालय लखनऊ खण्डपीठ से रिटायर्ड और लोकायुक्त उत्तराखण्ड), न्यायमूर्ति माइकेल सल्धाना (कर्नाटक उच्च न्यायालय से रिटायर्ड), न्यायमूर्ति फखरूद्दीन (उच्च न्यायालय मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ से रिटायर्ड), न्यायमूर्ति बी. जी. कोल्से पाटिल (त्यागपत्रित मुंबई उच्च न्यायालय) द्वारा समर्थित

साथी,

साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुनर्वास तक पहुँच) विधेयक 2011 को संसद में रखने हेतु राष्ट्रीय अभियान की शुरूआत करने के लिये तमाम इन्साफ पसन्द व्यक्ति, सामाजिक संगठन एवं समुदाय एक साथ आ रहे हैं। एक प्रभावी अभियान की रूपरेखा तय करने के लिये सभी साथी **23–24 नवम्बर (शनिवार–रविवार) को इलाहाबाद (उ. प्र.) में मिल रहे हैं।**

इस अभियान का नारा होगा 'हिंसा ख़त्म करो! इन्साफ़ और अमन ज़िन्दाबाद!' अभियान की शुरूआत के लिये आयोजित इस सम्मेलन में शिरकत के लिये हम आपसे अपील करते हैं।

सम्मेलन में भाग लेने वाले सभी साथियों के ठहरने का इंतज़ाम इन जगहों पर किया गया है:

1. **साधना सदन** (सन्त जोसेफ कॉलेज के सामने, ताशकन्त मार्ग) इलाहाबाद
2. **जी. बी. पन्त सामाजिक अध्ययन संस्थान,** झूंसी, इलाहाबाद।
3. **मित्रों के निवास**

बाहर से आने वाले प्रतिभागी कैम्प आफिस या उन साथियों से सम्पर्क कर सकते हैं जिनके नाम और फोन नम्बर स्थानीय सम्पर्क के तौर पर नीचे दिये गये हैं।

सेमिनार के लिये कार्यक्रम स्थल : जगत तारन कॉलेज, 32, अमरनाथ झा मार्ग, जार्ज टाउन, इलाहाबाद।

जनसभा स्थल : प्रयाग संगीत समिति, 12 सी, कमला नेहरू मार्ग, सिविल लाईन्स, इलाहाबाद।

अभिवादन के साथ

राष्ट्रीय अभियान की तदर्थ समिति

तीस्ता सीतलवाड (संयोजक), डा. अमरजीत सिंह नारंग, इरफान इंजीनियर, असलम ग़ाज़ी, मौलाना बुरहानुद्दीन क़ासमी, मौलाना दरियाबादी, डॉल्फी डिसूजा, फरीद शेख, हारून मोज़ावाला, जावेद आनन्द, केवल उके, कौशिक सांघवी, राहुल बोस, सुमेध जाधव, यूसुफ मुच्छाला

एवं

पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़ (PUCL), प्रगतिशील लेखक संघ, इन्स्टीट्यूट फॉर सोशल डेमोक्रेसी (ISD), जागृत समाज, आज़ादी बचाओ आन्दोलन, स्त्री मुक्ति संगठन, न्यू सोशलिस्ट इनीशिएटिव, शहरी ग़रीब संघर्ष मोर्चा, हयूमन राईट्स ला नेटवर्क, जोश एण्ड फिराक़ लिटरेरी सोसाइटी, संभव द्वारा जारी

सम्पर्क : सबरंग, निरंत, जुहू तारा रोड, जुहू, मुम्बई–400049।
फोन नं. : 91–022 26602288 / 26603927
e-mail : teestateesta@gmail.com, www.sabrang.com

कैम्प आफिस : कॅरिअर कोचिंग, 13, कमला नेहरू रोड, सिविल लाईन्स, इलाहाबाद।
स्थानीय सम्पर्क व्यक्ति : अंशु मालवीय (9415812917, e-mail : anshumalviya@yahoo.com)
उत्पला शुक्ल (9415828093, e-mail : utpalashukla@gmail.com)
ज़फर बख्त (9839054009, e-mail : zafarbakht@radiffmail.com)
प्रो. अली अहमद फातमी (9415306239 zafarbakht@radiffmail.com)

साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुनर्वास तक पहुँच) विधेयक 2011 : एक नजर में

विधेयक की ज़रूरत :–

हमारे आज़ाद भारत का इतिहास लगातार किसी एक समुदाय को निशाना बनाकर कर की गई हिंसा और साम्प्रदायिक हमलों का गवाह रहा है। इस तरह की हिंसा से न केवल जान और माल का नुकसान होता है, लोग अपने घर और ज़मीन से उजड़ते हैं बल्कि हमारे संविधान द्वारा सभी भारतीयों को दिये गये बराबरी के अधिकार का भी हनन होता है। यही नहीं इस तरह की हिंसा हमारी साझा संस्कृति को खतम कर समुदायों में एक दूसरे से डर, तनाव और नफ़रत को बढ़ावा देती है। इस तरह साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा हमारे लोकतांत्रिक ताने–बाने को नष्ट करने पर आमादा है और एक सभ्य राष्ट्र के रूप में हमारी पहचान पर कलंक है।

कुछ उदाहरणों से बात और साफ हो जाएगी। हमारे देश में किसी समूह को निशाना बनाकर की गई हिंसा के दौर बार–बार आते रहें हैं। इन हिंसक वारदातों के सबसे भयानक शिकार औरतें और बच्चे होते हैं। पिछले तीन दशकों में इस प्रकार की हिंसा की घटनाओं में न केवल बढ़ोत्तरी हुई है बल्कि उनका पैमाना भी बहुत बढ़ गया है। इन हिंसक वारदातों में राज्य की बदलती हुई भूमिका गौरतलब है। किसी घटना में राज्य ने हिंसा को उकसाया है, कहीं प्रायोजित किया है और कहीं अपने साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह के हिसाब से उसने खामोशी से तमाशा देखा है और हिंसक समूहों को खुलेआम अपनी मनमानी करने दी है।

नेल्ली, आसाम (1983), दिल्ली (1984), कश्मीर (1989), भागलपुर (1989), मुंबई (1992–93), गुजरात (2002) और कंधमाल, उड़ीसा (2008) जैसी घटनाएँ दिखाती हैं कि भारत के धार्मिक अल्पसंख्यक चाहे वे मुसलमान हों, ईसाई हों, सिख हों या कश्मीरी पंडित, इन हिंसक दौरों में आक्रामक समूह–संगठन और पक्षपाती राज्य ने मिलकर उनके संवैधानिक अधिकार छीन लिये हैं। इसी प्रकार कर्नाटक में तमिल और महाराष्ट्र में बिहारी उन भाषाई अल्पसंख्यकों के उदाहरण हैं जो लक्षित हिंसा का शिकार रहे हैं। सिर्फ अल्पसंख्यक ही नहीं बल्कि सामाजिक रूप से कमज़ोर तबकों जैसे दलित और अदिवासियों को भी सामूहिक रूप से हिंसा के निशाने पर लिया जाता रहा है। मिसाल के लिये रमाबाई नगर पुलिस फायरिंग (1998) एवं खैरलांजी जनसंहार (2006) को लिया जा सकता है।

इन सभी घटनाओं में कुछ बातें एक जैसी हैं। असली हिंसा के काफी पहले से संख्या के रूप में कम या सामाजिक रूप से कमज़ोर तबकों के ख़िलाफ भरपूर नफ़रत का प्रचार किया गया। हिंसा के वक्त पुलिस और प्रशासन ने या तो हिंसा का साथ दिया या खामोश रहे। हिंसा के बाद पीड़ित लोग इन्साफ, मुआवज़े और पुनर्वास के लिये भटकते रहे लेकिन उन्हें राज्य की सामान्य मानवीय सहायता भी नहीं हासिल हो सकी। घटनाओं को दशकों बीत जाते हैं लेकिन इन्साफ नहीं मिलता।

सामाजिक पूर्वाग्रहों से लड़ाई तो एक लंबे सामाजिक आन्दोलन की मार्फत ही हो सकती है लेकिन क्या कोई ऐसा तरीक़ा नही निकाला जा सकता जिससे कि हिंसा के दौरों के वक्त सरकारी मशीनरी को पक्षपातहीन और जवाबदेह बनाया जा सके और ऐसा न होने पर ज़िम्मेदार लोगों को कठघरे में खड़ा किया जा सके। क्या कोई ऐसा रास्ता नहीं हो सकता कि पीड़ितों के लिये इन्साफ की डगर आसान बनाई जा सके और उनकी उजड़ी हुई ज़िन्दगी को तत्काल कम से कम भौतिक रूप से बसाया जा सके। इन्हीं सवालों का जवाब देने की कोशिश है 'साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुनर्वास तक पहुँच) विधेयक 2011'।

विधेयक किसने तैयार किया है :

विधेयक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद के सदस्यों ने गहरे सोच–विचार के बाद तैयार किया है। जैसा कि हम जानते हैं कि परिषद के सदस्य लंबे सामाजिक अनुभव से पक कर आये हैं। उन्होंने समाज के अलग–अलग क्षेत्रों में अपने काम से अपनी पहचान कायम की है। यही नहीं आज जब भूमंडलीकरण के दौर में राज्य अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी से पीछे भाग रहा है, ये परिषद के सदस्यों की पहलकदमी का ही नतीजा है कि बहुत से ऐसे कानून पास हुये हैं जिनसे राज्य के कल्याणकारी रूप को बचाया जा सके। भोजन का अधिकार, सूचना का अधिकार, रोज़गार गारन्टी जैसे कानून इन्हीं सामाजिक रूप से सचेत लोगों की पहलकदमी की वजह से आ सके हैं।

विधेयक की कुछ खास बातें :

- यह विधेयक किसी भी राज्य में धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों तथा दलित और आदिवासियों के सदस्यों की संगठित और लक्षित साम्प्रदायिक हिंसा से रक्षा का वादा करता है।

- अल्पसंख्यक या कमज़ोर समुदाय के खिलाफ़ नफरत भरे भाषण, बयानबाज़ी या लेखन की शुरूआत साम्प्रदायिक हिंसा के बहुत पहले हो जाती है। यही प्रचार असली हिंसा के लिये ईंधन मुहैया कराता है। हालाँकि आई.पी.सी. की धारा 153ए के तहत इस तरह के भड़काऊ भाषण या लेखन के खिलाफ़ सज़ा तजवीज की गई है लेकिन यह विधेयक नफरत भरे प्रचार को फिर से परिभाषित करता है। इसी तरह यह अन्य कई अपराधों की फिर से परिभाषा करता है जैसे–यन्त्रणा, लैंगिक हिंसा, संगठित एवं लक्षित साम्प्रदायिक हिंसा, कर्तव्य न निभाना और अपने से नीचे के अधिकारियों को आदेश देने में देर या कोताही। इस विधेयक में साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान महिलाओं पर होने वाले ज़ुल्म पर विशेष ध्यान दिया गया है।

- आज से 15 साल पहले एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने कहा था कि 'कोई भी दंगा 24 घंटे से ज़्यादा नहीं चल सकता अगर राज्य उसे न चलाना चाहे।' राज्य के पक्षपातपूर्ण होने और हिंसा में हिस्सा लेने के बारे में यह एक भीतरी आदमी का ईमानदार बयान था। इस बयान की बाद की कई जाँच कमेटियों और अधिकारियों के बयान से पुष्टि होती है। दंगों के वक्त पुलिस–प्रशासन की अनदेखी या पक्षपात से न केवल दंगा बढ़ता चला जाता है बल्कि पुनर्वास भी असंभव हो जाता है। नतीजा होता है भारतीय लोकतंत्र और न्याय व्यवस्था में लोगों का भरोसा उठने लगता है। भारतीय कानून के इतिहास में पहली बार उँचे पदों पर बैठे नौकरशाहों को भी 'आदेश देने में कोताही' के लिये दायरे में लिया गया है। अगर कहीं साम्प्रदायिक हिंसा की वारदात होती है तो उन नौकरशाहों पर भी मुकदमा चलाया जा सकता है जिनके नीचे आने वाले अधिकारियों–कर्मचारियों ने अपना कर्तव्य पालन नहीं किया और हिंसा को भड़कने दिया। दूसरे शब्दों में बड़े अधिकारियों को भी हिंसा के भड़कने और फैलने के मामलों में ज़िम्मेदार बनाया गया है।

- साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान होने वाले नुकसान की भरपाई के लिये यह विधेयक मुआवज़े और पुनर्वास के ठोस नियम बताता है। ताकि यह किसी सरकार के रहमोकरम पर निर्भर न रहे। यह नियम सभी के लिये हैं चाहे वह अल्पसंख्यक समुदाय का हो या बहुसंख्यक समुदाय का। विधेयक सरकार को वैधानिक रूप से मजबूर करता है कि वह किसी भी हालत में एक महीने के भीतर मुआवज़े का भुगतान करे। मुआवज़े के लिये न्यूनतम मानक भी तय किये गये हैं जैसे मृत्यु के लिये 15 लाख, बलात्कार के लिये 5 लाख, गंभीर रूप से घायल के लिये 2 लाख, मानसिक प्रताड़ना और अवसाद के लिये 3 लाख। सम्पत्ति नष्ट होने, घर या व्यापार की हानि होने पर दिया जाने वाला मुआवजा महँगाई की दर के साथ बदला जायेगा। जबरन बेदखली, घर या व्यापार पर जबरन कब्जा हो जाने और अवसरों के खत्म होने पर भी मुआवजे की व्यवस्था है।

- नये कानून को लागू करने में सहायता के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण की स्थापना की जाएगी। इसका नाम होगा 'साम्प्रदायिक सद्भाव, न्याय और पुर्नवास के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण।' ऐसे ही प्राधिकरण राज्यों में भी बनाये जाएंगे। भारतीय राज्य के संघात्मक ढांचे के मद्देनजर राष्ट्रीय प्राधिकरण राज्यों को बाध्य तो नहीं कर सकता लेकिन वह न्यायालय से राज्यों के लिए निर्देश प्राप्त कर सकता है। राष्ट्रीय प्राधिकरण में सात सदस्य होंगे जिसमें से 4 अल्पसंख्यक, महिला, दलित और आदिवासी तबके के होंगे।

विधेयक से कौन डरता है?

अभी विधेयक संसद के सामने पहुँचा भी नहीं कि इसके खिलाफ दुष्प्रचार शुरू हो गया। इस पर आरोप लगाये जाने लगे कि यह भारतीय समाज को बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक दो भागो में बांट देगा या यह अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा किये गये साम्प्रदायिक अपराधों की अनदेखी करता है। यह दुष्प्रचार उन्हीं के द्वारा किया जा रहा है जो आमतौर पर नफरत की राजनीति ही करते है। जिन्होंने संख्याबल या सामाजिक ताकत के मार्फत लोकतंत्र को अगवा करने की हमेशा कोशिश की है।

इसे समझने के लिए हमें प्रातिनिधिक लोकतंत्र की बारीकियों को समझना होगा। यह लोकतंत्र तभी अपने को सही लोकतंत्र के रूप में स्थापित कर सकता है जब यह अल्पसंख्यक या सामाजिक रूप से कमजोर तबकों की रक्षा एवं बराबरी का दावा कर सके। लेकिन इतिहास गवाह है कि चाहे वह कश्मीर के पंडित हों, गुजरात के मुसलमान हों, उड़ीसा के ईसाई हों, दिल्ली के सिख हों या खैरलांजी के दलित, हमेशा बहुसंख्या की ताकत से दबाये गये हैं। वे न केवल साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार हुए है बल्कि उन्हें आज तक इन्साफ नही मिला। हालात और बिगड़े हुए महसूस होते हैं जब हम देखते हैं कि इन घटनाओं में राज्य के जिम्मेदार पदाधिकारी न केवल हिंसा को रोकने में नाकाम रहे बल्कि उन्होंने हिंसक गुटों का साथ भी दिया। उन्होंने पीड़ितों तक इन्साफ पहुँचने के रास्ते में भी बाधाएँ

खड़ी की। हद तो तब हो गई जब चुनावों का इस्तेमाल साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण बढ़ाने के लिए किया गया। साम्प्रदायिक हिंसा को जायज़ ठहराने के लिए बहुमत के तर्क का इस्तेमाल किया गया। ऐसे माहौल में क्या जरूरी नहीं हो जाता कि लोकतंत्र के बहुमत वाले तर्क को कानून और संविधान के बराबरी वाले तर्क से ठीक किया जाये। अगर भीड़ किसी इन्सान को घेर कर मार देती है तो हम यह तर्क नहीं दे सकते कि भीड़ इसलिए हत्यारी नहीं है चूंकि वह बहुमत में है। विधेयक हमारे लोकतंत्र को एक जरूरी संतुलन देता है। वह समाज को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक में बांटता नहीं बल्कि पहले से ही बंटे हुए समाज में संवैधानिक बराबरी और कानून के शासन का पुल बाँधता है।

यह विधेयक बहुसंख्यकों के विरूद्ध नहीं है बल्कि यह राज्य की मशीनरी को अल्पसंख्यकों और सामाजिक रूप से कमजोर तबकों के लिए संवेदनशील और जवाबदेह बनाने की पहल है। यह अल्पसंख्यकों और सामाजिक रूप से कमज़ोर तबके के लिये विशेष चिंता दिखाता है क्योंकि इन तबकों की सामाजिक पहचान की वहज से ही उन्हें सामूहिक हिंसा का शिकार बनाया जाता है। यह इस बात की ताईद करता है कि वही लोकतंत्र सफल हो सकता जिसमें इन्साफ और बराबरी सामाजिक ताकत के हिसाब से नहीं बल्कि नागरिक होने के नाते मिलते है। इस विधेयक के खिलाफ झूठा प्रचार करने वाले वही हैं जिन्हें हमारी तहज़ीब, लोकतंत्र और संविधान में विश्वास नहीं।

हम क्या करें?

यह विधेयक बनने के बाद ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है। इस पर बहस हो और यह कानून बन सके इसके लिए विभिन्न दलों में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है। एक राष्ट्रीय अभियान शुरू किया गया है ताकि विधेयक को संसद में रखा जाये और इस पर पूरे देश में चर्चा हो सके।

हमारा संविधान कहता है कि राज्य किसी भी व्यक्ति से धर्म, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव नहीं कर सकता। साथ ही संविधान हर व्यक्ति की कानून के सामने समानता का भी वादा करता है। लेकिन हालात इसके उलट है। खासकर साम्प्रदायिक हिंसा के मामलों में राज्य व उसके अमले न केवल भेदभाव करते पाये जा रहे हैं बल्कि खुलकर अत्याचारियों का साथ दे रहे हैं। ऐसे में संविधान, लोकतंत्र और साझा संस्कृति के उसूलों में यकीन करने वाले सभी व्यक्तियों, संगठनों और समूहों की यह जिम्मेदारी बनती है कि साम्प्रदायिक एवं सामाजिक भेदभाव की बीमारी को निकाल फेकें और एक स्वस्थ लोकतंत्र के निर्माण के लिए आगे बढ़ें। साम्प्रदायिक और लक्षित हिंसा (न्याय और पुर्नवास तक पहुँच) विधेयक 2011 को कानून बनाने की मुहिम में शामिल हों।